PhD Pre-Submission Seminar Paper

भाषा और हिन्दी आलोचना : अंतर्संबंध

(विशेष संदर्भ: रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा और नामवर सिंह की आलोचना-कृतियाँ)

BHASHA AUR HINDI AALOCHANA: ANTARSAMBANDH

(VISHESH SANDARBH: RAMCHANDRA SHUKLA, HAJARIPRASAD DWIVEDI, RAM BILAS SHARMA AUR NAMAVAR SINGH KI AALOCHANA-KRITIYAAN)

शोध-निर्देशक

डॉ. ऋषि भूषण चौबे

सहायक प्राध्यापक

हिन्दी विभाग, प्रेसिडेंसी विश्वविद्यालय, कोलकाता

शोधार्थी

प्रियंका कुमारी सिंह

Enrolment No.- PU/PHD/HINDI/2018

Registration No.- R-18RS01210116

PRESIDENCY UNIVERSITY
KOLKATA

हिन्दी विभाग

प्रेसिडेंसी विश्वविद्यालय

कोलकाता

भाषा और हिन्दी आलोचना : अंतर्संबंध

(विशेष संदर्भ: रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा और नामवर सिंह की आलोचना-कृतियाँ)

अध्याय विन्यास

अध्याय 1. भाषा: अवधारणा

I. भाषा: सम्प्रेषण, साधन, साध्य

II. भाषा: विचार और चिंतन प्रक्रिया का परिप्रेक्ष्य

III. भाषा: कला और सौंदर्यबोध का परिप्रेक्ष्य

IV. भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय चिंतन परम्परा में भाषा

अध्याय 2. आलोचना: अवधारणा एवं स्वरूप

I. साहित्यिक विधा के रूप में आलोचना: भारतीय तथा पाश्चात्य अवधारणा

II. आलोचना और सिद्धांत (थ्योरी) का अंतर्संबंध

III. आलोचना और रचना का अंतर्संबंध

अध्याय 3. भाषा और हिन्दी आलोचना

I. रामचंद्र शुक्ल के भाषा संबंधी विचार

II. हजारीप्रसाद द्विवेदी के भाषा संबंधी विचार

III. रामविलास शर्मा के भाषा संबंधी विचार

IV. नामवर सिंह के भाषा संबंधी विचार

अध्याय 4. हिन्दी आलोचना की भाषा

I. रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना-भाषा

II. हजारीप्रसाद द्विवेदी की आलोचना-भाषा

III. रामविलास शर्मा की आलोचना-भाषा

IV. नामवर सिंह की आलोचना-भाषा

अध्याय 5. भाषा और आलोचना: समग्र मूल्यांकन

I. भाषा और आलोचना का अंतर्संबंध

II. आलोचना-भाषा के संदर्भ में आलोचकों में मतैक्य

III. आलोचना-भाषा के संदर्भ में आलोचकों में मतभिन्नता

IV. आलोचना-भाषा का आदर्श

- उपसंहार
- संदर्भ ग्रंथ सूची

'भाषा और हिन्दी आलोचना : अंतर्संबंध' शीर्षक शोध-प्रबंध में हिन्दी आलोचना में भाषा-संबंधी चिंतन के सूत्रों की खोज की गई है तथा हिन्दी आलोचना की अपनी भाषिक संरचना का भी अध्ययन किया गया है। हिन्दी आलोचना की विधिवत शुरुआत भारतेंदु युग से मानें तो इसका इतिहास डेढ़ सौ वर्षों से कुछ अधिक का ठहरता है। इस समयावधि में हिन्दी साहित्य वाङ्मय में कई आलोचक हुए हैं और हैं। उन सबका अध्ययन एक शोध-प्रबंध में सम्भव नहीं अतः अध्ययन की सुविधा के लिए शोध-कार्य को हिन्दी के चार प्रमुख आलोचकों रामचंद्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा तथा नामवर सिंह की आलोचना-कृतियों पर केंद्रित रखा गया है।

भाषा मानव-अस्तित्व के केंद्र में है। मानव-सभ्यता और संस्कृति का बहुमुखी विकास बिना भाषा के सम्भव नहीं हो सकता था क्योंकि मानव की विकसित चेतना भाषा की निर्मिति है। मनुष्य का संसार भाषा का संसार माना गया है और मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति भाषा मानी गई है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि अब तक उपलब्ध सबसे पुराने ग्रंथों—ऋग्वेद हो या बाइबल— तक में भाषा की महत्ता का गहरा बोध है और उसका मुक्त-कंठ से वर्णन है। जैसा कि सुविख्यात दार्शनिक व भाषा-चिंतक लुडविग विट्गेंस्टाइन ने कहा है, "मैं उतना ही जानता हूँ जितने के लिए मेरे पास शब्द हैं।" अर्थात् भाषा मनुष्य के समस्त ज्ञान का भी मूल है। मनुष्य का भाव-जगत अन्य प्राणियों की तुलना में कहीं अधिक विस्तृत है। इस विस्तृत भाव-जगत का होना और मनुष्य द्वारा इसकी साहित्य रूप में अभिव्यक्ति भी भाषा के कारण और भाषा के माध्यम से होती है।

साहित्य विचारों का शब्दों में अवतीर्ण होना है और विचारों से तात्पर्य कल्पना, अनुभव, विवेचना आदि मानसिक क्रियाओं से है। विचार भाषा में शरीर धारण करते हैं, पोषण पाते हैं और अपनी पुष्टि के साथ-साथ भाषिक अभिव्यक्ति को पुष्ट करते हैं। विचार और भाषा का सबसे कलात्मक और बुनियादी संयोगस्थल साहित्य है। शब्द और अर्थ के रमणीय—दोष-रहित, गुण-युक्त और अलंकृत— सहभाव को साहित्य मानने से लेकर साहित्य को राजनीति के आगे चलने वाली मशाल मानने तक के दीर्घ काल-प्रवाह में साहित्य पर गहन चिंतन की प्रवृत्ति और परम्परा लगातार मौजूद रही है। साहित्य का भाषा से संबंध कैसा हो या साहित्य की भाषा कैसी हो कि साहित्य का आस्वाद या साहित्य की सामाजिक-सांस्कृतिक भूमिका का निर्वाह प्रभावी ढंग से हो, यह साहित्य-चिंतन या साहित्यिक आलोचना का एक प्रमुख प्रश्न रहा है। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा में साहित्य को सर्जनात्मकता प्रदान करने वाले भाषिक तत्त्वों का विश्लेषण तथा इससे प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर

साहित्य के लक्षण, गुण, दोष, उत्कृष्टता आदि के मानदंड निर्धारण का काम हुआ है। आधुनिक हिन्दी आलोचना में भाषा-संबंधी चिंतन की स्थिति क्या है, आलोचकों ने साहित्य के सम्पूर्ण मूल्यांकन में उसके भाषिक पक्ष को कितना महत्व दिया है तथा भाषा-विश्लेषण के क्या उपकरण हिन्दी आलोचना ने अपनाये व विकसित किए हैं, इन प्रश्नों पर यह शोध-कार्य केंद्रित है।

आधुनिक आलोचकों ने आलोचना की भाषा को भी आलोचना का 'औजार' माना है। रचनाकार की अंतःवृत्तियों की गहरी छानबीन तथा उसके उद्घाटन के लिए, रचना की सार्थकता की खोज के लिए, रचना को परिभाषित कर ज्ञान के अन्य क्षेत्रों द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से उसे जोड़कर मानव समाज-सभ्यता-संस्कृति की गति के विषय में समग्र समझ बनाने के लिए आलोचना की अपनी भाषा की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है। चयनित आलोचकों की आलोचना-भाषा के अध्ययन-विश्लेषण द्वारा हिन्दी आलोचना की भाषा की विशिष्टताओं को समझने का प्रयास भी इस शोध-प्रबंध में किया गया है।

यह शोध-प्रबंध पाँच अध्यायों में विभाजित है, जिनका सार इस प्रकार है-

अध्याय 1. भाषा : अवधारणा

इस अध्याय के अंतर्गत चार उपअध्यायों में भाषा की अवधारणा पर विस्तार से विचार करने के साथ-साथ भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र में भाषा-संबंधी चिंतन की परम्परा का संक्षिप्त अध्ययन किया गया है।

भाषा मनुष्य प्रजाति की एक मौलिक विशेषता है। यह मानव शरीर तथा मन का एक कार्य-व्यापार है, नोम चॉम्स्की के शब्दों में भाषा एक 'मेंटल फैकल्टी' है। निर्मल वर्मा के शब्दों में भाषा मनुष्य की देह का अदृश्य अंग है। भाषा एक सामाजिक निर्मिति और सामाजिक कर्म है। भाषा संकेत और संकेतकों की एक संरचना है, एक ऐसी व्यवस्था है जिसके घटकों का अध्ययन किया जा सकता है। इसके अलावा भाषा एक उपकरण भी है जिसके माध्यम से जटिल से जटिल तकनीकी और सामाजिक कार्यों को निर्देशित और नियंत्रित किया जा सकता है। भाषा मनुष्य के समक्ष वास्तविकता को उद्घाटित ही नहीं करती बल्कि वास्तविकता को रचती भी है। भाषा पर हुआ आधुनिक अंतर्विषयक चिंतन भाषा की अवधारणा के तहत इन सभी पहलुओं पर प्रकाश डालता है।

भाषा की मानव अस्तित्व में सबसे पहली भूमिका अवचेतन और चेतना के निर्माण की है। पर अपने प्रकट रूप में मनुष्य के समक्ष भाषा का सबसे बुनियादी काम बातों को एक-दूसरे तक पहुँचाने का, यानी संवाद और

सम्प्रेषण का है। बोलने की जहमत व्यक्ति उठाता ही इसलिए है कि उसे कुछ कहने की आवश्यकता या इच्छा है। कहने से काम हो जाते हैं, विचारों के आदान-प्रदान से मनुष्य निर्मित यह जटिल विश्व-व्यवस्था संचालित होती है। अतः भाषा समाज और संसार को चलाने का एक साधन है। भर्तृहरि के अनुसार शब्दों का स्वतंत्र संसार है और भाषा द्वारा निर्मित संसार बाह्य जगत से संबद्ध होता हुआ भी संचालित भाषा के अपने तंत्र से ही होता है। इस तरह समाज और संसार को साधने के लिए भाषा को साधना या अर्जित करना अनिवार्य है अतः भाषा को साध्य भी माना गया है। हर भाषा अपनेआप में एक विशिष्ट विश्व-दृष्टि होती है, जो अपने बोलनेवालों के मानस में विश्व और जीवन के बोध को खास ढंग से परिभाषित करती है। इसके समानांतर सार्वभौमिक व्याकरण की अवधारणा है जो समस्त मानव-भाषा को एक सार्वभौमिक व्याकरण, वाक्य गठन के एक नियम से परिचालित सिद्ध करती है। अलग-अलग भाषाओं में अभिव्यक्त भावों-विचारों-संवेदनाओं के बीच साम्य और वैषम्य का एक आधार भाषा के ये पक्ष भी हैं। मुख्य रूप से फर्डिनांड डी सस्यूर, लेनर्ड ब्लूमफील्ड, एडवर्ड सपीर, नोम चॉम्स्की, स्टीफन पिंकर जैसे भाषा वैज्ञानिकों; मार्टिन हाइडेगर, लुसिएँ गोल्डमान आदि चिंतकों-विद्वानों के भाषा-संबंधी विचारों के माध्यम से भाषा की उन आधुनिक अवधारणाओं को समझने का प्रयास किया गया है जिनसे साहित्यालोचन का क्षेत्र प्रभावित हुआ है।

चेतना के, सभ्यता के और ज्ञान के प्रसार के साथ-साथ मनुष्य जिस अनुपात में अपने अस्तित्व के विषय में जागरूक हुआ, उसी अनुपात में भाषा-संबंधी उसकी धारणा और उसके ज्ञान में भी विस्तार हुआ है। भाषा को ईश्वरप्रदत्त सबसे पवित्र व शक्तिशाली वस्तु मानने से लेकर आज भाषा के माध्यम से 'आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस' के निर्माण तक यह ज्ञान पहुँचा है। भारतीय चिंतन परम्परा आरम्भ से ही भाषा (वाक्) केंद्रित रही है। व्याकरण और दर्शन में भाषा में शब्द और अर्थ के संबंध, अर्थ-ग्रहण की क्रमशः जटिल होती प्रक्रिया पर गम्भीर वैज्ञानिक चिंतन हुआ है जिससे काव्यशास्त्रीय भाषा-चिंतन ने साहित्य में भाषा के सर्जनात्मक-सौंदर्यात्मक प्रयोग से जुड़े सूत्र ग्रहण किए हैं। चिंतन की यह पूरी परम्परा न एकांगी रही है और न ही जड़। भाषा को नित्य या प्रदत्त व्यवस्था मानने वाले मीमांसक हों या अनित्य और परम्परा द्वारा विकसित मानने वाले नैयायिक-वैशेषिक हों, सबने भाषा की प्रकृति से जुड़े महत्वपूर्ण निष्कर्ष दिए हैं। इस क्षेत्र में पाणिनी, भर्तृहरि और आनन्दवर्द्धन के चिंतन का अवदान सर्वाधिक है, अतः इस शोध-प्रबंध में व्याकरण तथा काव्यशास्त्रीय भाषा-चिंतन का अध्ययन इनपर केंद्रित है।

अध्याय 2. आलोचना : अवधारणा एवं स्वरूप

इस अध्याय के अंतर्गत तीन उपअध्यायों में साहित्यिक विधा के रूप में आलोचना की भारतीय तथा पाश्चात्य अवधारणा, आलोचना और सिद्धांत (थ्योरी) के अंतर्संबंध, रचना और आलोचना के अंतर्संबंध का अध्ययन किया गया है।

मनुष्य की रचनाशीलता का इतिहास पुराना है तो आलोचना की परम्परा भी नयी नहीं है। परिपक्व रचनाशीलता के साथ आलोचना का अस्तित्व भी रहता है। आधुनिक काल से पहले तक की आलोचना ने साहित्य और इसके घटकों को परिभाषित करने का काम किया। आलोचना की अवधारणा को परिभाषित करने का प्रयास अपेक्षाकृत आधुनिक है। खासकर पिछली शताब्दी, यानी बीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य साहित्य वाङ्मय में और भारतीय साहित्य वाङ्मय में आलोचना की अवधारणा पर बहुत विचार किया गया है। आलोचना शब्द के शाब्दिक अर्थ पर अनेक बार लिखा गया है। शाब्दिक अर्थ जल्दी नहीं बदलता, शाब्दिक अर्थ में निहित तात्कालिक मान्यताएँ परिवर्तनशील होती हैं। देवीशंकर अवस्थी के शब्दों में कहें तो 'न साहित्य स्थिर है न साहित्यशास्त्र।' जैसे हर युग 'कविता क्या है' सवाल करता है, वैसे ही बीसवीं सदी के अलग-अलग दशकों में 'आलोचना क्या है' का जवाब भी युगानुसार खोजने के प्रयास हुए हैं। इस शोध-प्रबंध इस अध्याय में इन्हीं परिवर्तनशील मान्यताओं के विश्लेषण के द्वारा आलोचना की अवधारणा को समग्रता में समझने का प्रयास किया गया है। आलोचना की अवधारणा में सवाल केवल आलोचना क्या है का नहीं है, बल्कि आलोचना का दायित्व, उसके तरीके, उसकी कसौटियों, रचना से आलोचना के संबंध आदि सवाल भी निहित होते हैं। इस अध्याय में आधुनिक हिन्दी साहित्य में आलोचना की अवधारणा पर ही विचार किया गया है, प्रसंगवश पाश्चात्य आलोचना की उन अवधारणाओं पर संक्षिप्त विचार किया गया है जिनसे हिन्दी आलोचना दूर तक प्रभावित हुई है। इस संदर्भ में रूसी रूपवाद, नयी समीक्षा, संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद पर अधिक विचार किया गया है।

आलोचना और शास्त्र/सिद्धांत (थ्योरी) के संबंध पर आलोचक एकमत नहीं हैं। आलोचना को परिभाषित करते हुए रेने वेलेक, एडवर्ड सईद आदि 'लिटेररी थ्योरी' को भी आलोचना के प्रमुख रूपों में एक रूप मानते हैं। रामचंद्र शुक्ल, नामवर सिंह शास्त्र या सिद्धांत को आलोचना से अलग साहित्यिक कर्म मानते हैं। शास्त्र को आलोचना मानने, न मानने पर भी एक बिंदु पर सभी साहित्य-चिंतक एकमत हैं कि सिद्धांत ही व्यावहारिक आलोचना के लिए सुनिश्चित ढाँचा—दृष्टिकोण और भाषा प्रदान करते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने समय की आलोचना को काव्य के गुण-दोष विवेचन की शास्त्रीय परम्परा से अलगाते हुए नये ढंग की समालोचना का अर्थ रचनाकार की अंतःवृत्तियों की गहन छानबीन का मार्मिक उद्घाटन माना। रामविलास शर्मा ने आलोचना को जनपक्षधर सांस्कृतिक आंदोलन का अंग मानते हुए इसका उद्देश्य जनता में बेहतर समाज व्यवस्था के लिए संघर्ष में प्रेरित करने वाली चेतना जगाने की दिशा में माना है। नामवर सिंह ने आलोचना को पाठक के समक्ष रचना का भाष्य करने वाला अतिरिक्त कर्म मानने के बदले प्रत्येक कृति को एक सांस्कृतिक प्रक्रिया मानते हुए कृतिकार, पाठक और आलोचक की अपनी-अपनी प्रतिक्रिया को इसकी अनिवार्य कड़ी मानने पर बल दिया है। 'बाकायदा आलोचकों' से इतर कवि आलोचकों और अन्य लेखकों ने भी आलोचना क्या है या आलोचना क्या हो पर विचार किया है, पर वे रचना को प्राथमिक और आलोचना को उसका उपजीवी कर्म ही मानते हैं। निर्मल वर्मा आलोचना को साहित्य का आलोक-स्तम्भ मानते हैं, इसका मुख्य कार्य कृति की सच्ची मूल्यवत्ता की पहचान मानते हैं और 'अच्छी आलोचना' की भूमिका यह मानते हैं कि उससे जीवन्त साहित्य का माहौल बनता है, पढ़ने की संस्कृति का वातावरण तैयार होता है। इसी तरह अज्ञेय, मुक्तिबोध, अशोक वाजपेयी आदि ने आलोचना को आपद्धर्म की तरह निभाते हुए आलोचना के स्वरूप पर भी विचार किया है। इन सबके मतों का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट लक्षित होता है कि हिन्दी में आलोचना की अवधारणा और आलोचना का रूप जड़ नहीं है बल्कि यह युगीन सांस्कृतिक-राजनीतिक स्थितियों और आवश्यकताओं से हिन्दी आलोचना परिभाषित-परिवर्तित होती रही है।

अध्याय 3. भाषा और हिन्दी आलोचना

इस अध्याय में चार उपअध्यायों के अंतर्गत चारों चयनित आलोचकों के भाषा-संबंधी विचारों के विश्लेषण के द्वारा उनकी भाषा-दृष्टि को समझने का प्रयास किया गया है। विश्लेषण के लिए जो बिंदु तय किए गए हैं वे इस प्रकार हैं- भाषा की अवधारणा पर विचार, भाषा और भाव/विचार का संबंध, भाषा और सम्प्रेषणीयता, भाषा और कविता, भाषा और गद्य विधाएँ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कविता की आलोचना के संदर्भ में आलोचना की अपनी दृष्टि और कसौटियाँ विकसित कीं। काव्यभाषा की सैद्धांतिकी गढ़ते हुए तथा कवियों की व्यावहारिक आलोचना करते हुए उन्होंने भाषा की प्रकृति, शब्द के प्रकारों व प्रकार्यों पर मौलिक चिंतन किया है। ऐसा करते हुए उन्होंने भारतीय दर्शन-व्याकरण-

काव्यशास्त्र की प्रमुख अवधारणाओं से पारिभाषिक शब्द लेते हुए भी उन्हें युगानुरूप नवीनता प्रदान की है, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में हुई तत्कालीन खोजों के साथ तारतम्यता बिठाते हुए उन अवधारणाओं को प्रासंगिक बनाया है। आचार्य शुक्ल ने साहित्य को भाषा का सबसे प्रशस्त प्रयोग कहा है; वाग्विभूति का संचित भंडार कहा है; किसी जाति की रक्षित वाणी की ऐसी अखंड परम्परा कहा है जो उसके जीवन के स्वतंत्र रूप की रक्षा करती हुई जगत की गति के अनुरूप उत्तरोत्तर उसका विकास करती चलती है। साहित्य को जब आचार्य शुक्ल जाति के विकास के लिए इतना महत्वपूर्ण मानते हैं तब स्पष्ट है कि उसके प्रसार और संचय को भी बहुत आवश्यक मानते हैं, उसकी प्रभविष्णुता, सम्प्रेषणीयता तथा जनमानस में लंबे समय तक उसके टिके रहने की क्षमता को आवश्यक मानते हैं। यह सब तभी संभव है जब साहित्य यानी जाति विशेष की विचार-परम्परा को उचित भाषा में व्यक्त किया जाए। आचार्य शुक्ल की सैद्धांतिक आलोचना का भाषिक पक्ष इसी उद्देश्य से प्रेरित है। कौन-सी रचना साहित्य की कोटि में आनी चाहिए और कौन-सी नहीं, इसके निर्धारण का प्रमुख आधार भी आचार्य शुक्ल रचना की भाषा को मानते हैं।

काव्य का प्रकृत लक्ष्य 'पदार्थों के साथ भावों के प्रकृत संबंध के प्रत्यक्षीकरण' को मानते हुए आचार्य शुक्ल ने काव्यभाषा में मूर्तिमत्ता, नाद-सौंदर्य, कथन की मार्मिकता, 'जाति-संकेत-सूचक' शब्दों के स्थान पर 'विशेष-रूप-व्यापार-सूचक' शब्दों के प्रयोग, व्याकरण-व्यवस्थित चलती भाषा, भाषा-विशेष की अपनी प्रकृति के अनुरूप मुहावरेदानी को वांछित माना है। कवियों की समीक्षा करते हुए भी वे प्रायः इन्हीं बातों को कसौटी बनाते हैं।

कथा-साहित्य में लचीली, व्यावहारिक तथा पात्रों के देशकाल अनुरूप भाषा के प्रयोग पर इन्होंने बल दिया है। आचार्य शुक्ल स्वयं एक सफल निबंधकार तथा आलोचक हैं, अतः उन्होंने निबंध व आलोचना की भाषा पर गद्य की अन्य विधाओं की तुलना में अधिक विचार किया है। भाषा की पूर्ण शक्ति के विकास का अवकाश निबंध विधा में सर्वाधिक होता है यह मानते हुए भी उनका कहना है कि निबंध में व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विशेषता के प्रदर्शन के लिए 'भाषा से सरकसवालों की सी कसरतें या हठयोगियों के से आसन न कराए जाएँ जिनका लक्ष्य तमाशा दिखाने के सिवा कुछ न हो।' इसी प्रकार विशुद्ध आलोचना में वे भाषा की क्रीड़ा को अनुचित मानते हैं क्योंकि 'किसी कवि की आलोचना कोई इसीलिए पढ़ने बैठता है कि उस कवि के लक्ष्य को, उसके भाव को ठीक-ठीक हृदयंगम करने में सहारा मिले, इसलिए नहीं कि आलोचना की भाव-भंगी और सजीले पद-विन्यास द्वारा अपना

मनोरंजन करे।’ साहित्य की किसी भी विधा में वे भाषा के ऐसे प्रयोग को उचित नहीं मानते जो विचार की सम्प्रेषणीयता में बाधक हो।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का साहित्य-चिंतन समग्र भारतीय चिंतन परम्परा के बीच हिन्दी साहित्य के विकास को उसके बीच और उसकी संगति में देखने की दृष्टि देता है। ‘कालीदास की रचना-प्रक्रिया’ पुस्तक में वे कालीदास के हवाले से स्वयं को ‘तत्त्वान्वेषी’ के बजाय ‘कृती’ कहते हैं जहाँ तत्त्वान्वेषी का अर्थ आधुनिक शब्दावली में आलोचक है और कृती का अर्थ है सहृदय पाठक। यही कारण है कि तत्त्वान्वेषी की तरह रचना में इतिहास, भूगोल, अलंकार, छंद और पद-लालित्य खोजने से अधिक कृती की तरह सीधे रस तक पहुँचने, उसमें डूब जाने और छककर सौंदर्य का पान करने में वे अधिक रमते हैं। रचना और रचनाकार की भाषा पर उनके विचार सुस्पष्ट मानदंडों के आधार पर वस्तुनिष्ठ विश्लेषण से अधिक आस्वादपरक टिप्पणियाँ हैं। रचना की भाषा उसकी अंतर्वस्तु के प्रभाव को तय करती है, इस बात से वे सहमत नहीं दिखते और मानते हैं कि रचना के भाव अगर हृदय को स्पर्श कर पाने में सक्षम हैं तो उसकी भाषा कितनी पात्र-देश-काल उपयुक्त है या नहीं है, यह जाँचने की कोई आवश्यकता नहीं, इस मामले में वे ‘भाव अनूठो चाहिए, भाषा कोऊ होय’ के हामी हैं। काव्यभाषा के सौंदर्य की जाँच के विषय में अपनी राय देते हुए द्विवेदीजी कहते हैं- “कवि की भाषा का उत्कर्ष देखना हो तो देखना चाहिए कि वह कितने कम शब्दों में, कितनी छोटी सीमा में बैठकर, किस असीम की ओर इशारा कर सका है। ‘काव्य-प्रकाश’ के शब्दों में उसके वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ कितना अतिशायी हुआ है।”

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के भाषा-चिंतन की सूक्ष्मता का पता उनके ‘लालित्य-तत्त्व’ नामक ग्रंथ से लगता है जहाँ मनुष्य की चेतना और उसकी सभ्यता के उत्तरोत्तर विकास से भाषा के द्वंद्वात्मक संबंध का विस्तृत विवेचन हुआ है। मनुष्य की प्रथम रूप-सृष्टि को भयमूलक नहीं बल्कि आनन्दमूलक मानते हुए संगीतमयी काव्यभाषा को मानव-चेतना की आदिम उल्लास-भावना का प्रतिफलन मानते हैं। गद्य को वे ‘प्रयोजन की भाषा’ कहते हैं और विकसित मनुष्य की तर्क-चेतना की स्वाभाविक परिणति मानते हैं। यहीं से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर द्विवेदी जी आधुनिक काव्यभाषा के विषय में कहते हैं- “दो कारणों से बहुत हाल में कविता की भाषा और शैली में भी परिवर्तन हुआ है। एक विषय को जब अनासक्त और तद्गत भाव से देखा जाता है तब स्वभावतः ही भावुकता का स्थान नहीं रह जाता। ऐसी अवस्था में कवि वैज्ञानिक की भाँति गद्यमय भाषा लिखने लगता है।”

डॉ. रामविलास शर्मा ने भाषा मात्र और हिन्दी भाषा के सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक पक्षों पर बहुत विचार किया है। तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो हिन्दी आलोचकों में भाषा के सभी पक्षों के प्रति सर्वाधिक रुचि और विचार-विमर्श रामविलास शर्मा के यहाँ है। वे मानते हैं कि भाषा-संबंधी किसी भी समस्या का विवेचन मानव-समाज के उद्भव और विकास के प्रसंग में ही संभव है। अतः भाषा संबंधी उनके चिंतन के आयाम भाषा वैज्ञानिक पहलुओं से लेकर विश्वस्तर की राजनीति से जुड़ते हैं।

आधुनिक साहित्यिक आलोचना में रचना की भाषा पर या शिल्प पर केंद्रित समीक्षा मुख्यतः उन समीक्षकों द्वारा हुई जो कुछ हद तक या पूर्णतः रूपवादी थे। दूसरी तरफ एक ऐसी समाजशास्त्रीय समीक्षा भी हिन्दी में पनप रही थी जो साहित्य को कलापक्ष और समाज पक्ष के दो विपरीत ध्रुवों के रूप में देखता और दिखाता था। इन दोनों ही आलोचना-पद्धतियों के विरोध में डॉ. रामविलास शर्मा की साहित्यिक आलोचना विकसित होती है। रचना के भाषिक पक्ष को कला पक्ष के अंतर्गत और विषय-वस्तु को सामाजिक पक्ष के अंतर्गत बाँट कर विचार करने की पद्धति को वे उचित नहीं मानते और न ही दोनों पक्षों को पूर्णतः एक ही चीज मानते हैं। रामविलास शर्मा यह मानते हैं कि “कविता के शिल्प का विवेचन उसकी विषय-वस्तु के विवेचन से कठिन होता है पर विषयवस्तु को अलग रखकर उसका विवेचन नहीं किया जा सकता।” साहित्य में कला के प्रति असावधानी के निदर्शन को रामविलास शर्मा सही नहीं मानते, इसके प्रमाण उनकी व्यावहारिक आलोचना में सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और डॉ. रामविलास शर्मा हिन्दी आलोचना में एक दूसरे के समकालीन हैं। जिस आधुनिक कविता की भाषा में ‘स्वाभाविक या वास्तव’ के दबाव को द्विवेदी जी ने लक्षित किया और उसे काव्यभाषा के लिए स्वास्थ्यप्रद प्रवृत्ति नहीं माना, उसी प्रवृत्ति के विषय में डॉ. शर्मा कहते हैं- “आधुनिक हिन्दी कविता में एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है जिसे हम नया यथार्थवादी रुझान कह सकते हैं। कविता की पुरानी शब्दावली, पुराने छंद, पुरानी प्रतीक-योजना नये कवियों को इसलिए पसंद नहीं आती कि वह यथार्थ जीवन के बोलचाल से, यथार्थ जीवन के चित्रों से मेल नहीं खाती। नये हिन्दी कवि भाषा और छंद से लेकर प्रतीक योजना तक यथार्थ की भूमि पर बढ़ने का प्रयास कर रहे हैं, यह उनके आधुनिक बोध का सकारात्मक पक्ष है।” कविता की विषयवस्तु के जीवन से जुड़ाव से काव्यभाषा में बदलाव को वे सकारात्मक मानते हैं, अनावश्यक नहीं।

काव्यालोचना में भाषा तथा कला-पक्ष की रामविलास शर्मा की समीक्षा की उत्कृष्टता का प्रमाण जैसे ‘निराला की साहित्य-साधना’ में मिलता है उसी प्रकार शमशेरबहादुर सिंह के गद्य पर उनके लेखन से गद्य की भाषा

की समीक्षा की उनकी सूक्ष्म दृष्टि का प्रमाण मिलता है। गद्य की लय, उसके सुथरेपन, वाक्य-रचना का आधुनिकता बोध से संबंध आदि बिंदुओं पर वे शमशेर के गद्य की कलात्मकता को परखते हैं, परखने के ये मानदंड भी वे शमशेर के गद्य के आस्वाद से ही प्राप्त करते हैं। गद्य के कलात्मक प्रयोग पर हिन्दी में पुस्तकों का अभाव उन्हें खलता है।

डॉ. नामवर सिंह का आलोचनात्मक लेखन जिस दौर में शुरू होता है वह हिन्दी में प्रयोगवाद और नयी कविता का दौर है। प्रयोगवादी कवि जोर-शोर से कविता के शिल्प, भाषा, प्रेषणीयता आदि सवालों पर न केवल कविता में लिख रहे थे बल्कि 'वक्तव्य' भी दे रहे थे। अपने लेखन के आरम्भ से ही नामवर सिंह को ऐसा साहित्यिक वातावरण मिला जिसमें भाषा और शिल्प की बारीकियों का सवाल प्रमुख था। अतः आलोचक नामवर सिंह के चिंतन व लेखन में प्रारम्भ से ही भाषा का मुद्दा महत्वपूर्ण रहा है। छायावादी कविता के अलंकृत और स्फीत भाषिक प्रयोग तथा प्रगतिवादी कविता की बेपरवाह या कलाहीन भाषा पर आक्षेप और उनके बरक्स एक बौद्धिक और कलात्मक काव्यभाषा की खोज के दावों और प्रयासों के माहौल में अपनी शुरूआती पुस्तक 'छायावाद' में नामवर जी ने काव्यभाषा को युगीन आवश्यकताओं और भावों के आवेश से चालित बताया है न कि किसी बने-बनाए, शाश्वत सिद्धांत से चालित। भाषा और शिल्प की बारीकियों को अपनी आलोचना में महत्वपूर्ण स्थान देते हुए भी नामवर सिंह रूपवादी रुझानों से सावधान रहे और पाठक को सावधान करते रहे। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि "साहित्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है भाषा। इसलिए साहित्य में कलात्मक सौंदर्य लाने के लिए उस माध्यम पर अधिकार प्राप्त करना आवश्यक है। लेकिन उस माध्यम को ही साध्य मानकर उसी की कारीगरी में सिमट जाना, कोरा रीतिवाद अथवा रूपवाद है।" डॉ. रामविलास शर्मा की तरह वे भी मानते हैं कि साहित्य में रूपविधान की अपेक्षा विषयवस्तु का महत्व अधिक है।

भाषा और अनुभव, भाषा और चिंतन, भाषा और ज्ञान की संरचना के बीच के संबंध को परिभाषित करने वाले नये अध्ययनों को वे ध्यान में रखते हैं। वे इस मत के समर्थन में हैं कि भाषा की समृद्धि अनुभव की शक्ति से जुड़ी है और अनुभव तभी पुष्ट हो सकते हैं जब व्यक्ति की भाषा समृद्ध हो। पर भाषा और अनुभव के इस संबंध को केवल सतही स्तर पर या यांत्रिक तरीके से समझा जाए तो विश्लेषण-मूल्यांकन की प्रक्रिया गलत दिशा में भी जा सकती है। हवाई बातों को, केवल शब्दों के खेल को अनुभव की गहराई समझने का भ्रम भी हो सकता है। इसलिए नामवर जी आलोचक से बहुत अधिक सावधानी और सृजनशीलता की माँग करते हैं।

नामवर सिंह पर कविता के प्रतिमानों से कहानी की आलोचना के 'आरोप' लगते रहे हैं, पर कथा की भाषा में काव्यात्मकता की प्रवृत्ति को नामवर सिंह ने उचित नहीं माना। साफ शब्दों में उन्होंने लिखा है, "प्रतीक-संकेत की पद्धति से भाषा में जहाँ एक ओर सूक्ष्म अर्थवत्ता आई है, वहाँ दूसरी ओर उस पर अनावश्यक काव्यात्मकता का लदाव भी हुआ है। कथा-साहित्य ने भाषा की एक परम्परा कायम की है। गद्य ने एक विशेष उत्तरदायित्व के साथ जन्म लिया है, जो कविता की भाषा के उत्तरदायित्व से कहीं बड़ा है।" सार्त्र के हवाले से वे कहते हैं कि गद्य एक प्रकार का निरंतर नामकरण है और नाम की सार्थकता इस बात में है कि बोध्य वस्तु के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए अपने अस्तित्व का लोप कर दे। इस तरह अंतर्वस्तु के अधिकतम सम्प्रेषण की क्षमता को, 'साफगोई' को वे गद्य की भाषा का सबसे आवश्यक गुण मानते हैं। नामवर सिंह उन चंद आलोचकों में हैं जिन्होंने आलोचना विधा पर भी बहुत गहन विचार किया है। आलोचना की अपनी भाषा का अकादमिक जड़ता और पत्रकारिता की चटपटी भाषा से मुक्त, यथातथ्य एवं संवेदनशील होना वे आवश्यक मानते हैं।

चारों आलोचकों के आलोचना-कर्म में भाषा-दृष्टि प्रखर है। हिन्दी आलोचना में भाषा-संबंधी सामाजिक-राजनीतिक-दार्शनिक-सौंदर्यशास्त्रीय पक्ष को इनकी आलोचना ने अपने-अपने तरीके से समृद्ध किया है। परम्परा से प्राप्त भारतीय भाषा-दृष्टि को समयानुकूल बनाने के साथ इन्होंने आधुनिक भाषा-चिंतन से भी संवाद किया है। इन आलोचकों के भाषा-संबंधी विचारों के अध्ययन से एक निष्कर्ष यह भी निकलता है कि बिना स्पष्ट भाषा-दृष्टि के आलोचना कर्म के साथ न्याय नहीं हो सकता।

अध्याय 4. हिन्दी आलोचना की भाषा

इस अध्याय में चार उपअध्यायों के तहत आलोच्य आलोचकों की आलोचना-भाषा की विशिष्टताओं का विश्लेषण किया गया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की गम्भीर, प्रौढ़ और विचारक्षम आलोचना भाषा को परवर्ती श्रेष्ठ आलोचकों ने हिन्दी में आलोचना के उपयुक्त पहला उत्तम ढाँचा माना है। आलोचक शुक्ल जी की भाषा में तत्सम शब्दों की अधिकता है, इसे कई आलोचकों ने रेखांकित किया है लेकिन यह तात्समिकता कहीं भी शुक्ल जी की भाषा को जटिल, अटपटी या बोझिल नहीं बनाती है। इसका कारण यह है कि वे अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भरसक नहीं करते, उनकी आलोचना का उद्देश्य पांडित्य-प्रदर्शन नहीं होने से वाक्य-प्रयोग में स्पष्टता दिखती है और पाठक से

संवाद की प्रवृत्ति के उद्देश्य से चालित उनके लहजे में रोचकता है। वे यथास्थान व्यंग्य करने, प्रसंगवश अपने व्यक्तिगत अनुभवों को आलोचना में शामिल करने से हिचकते नहीं हैं, इस कारण उनकी भाषा में उनके अपने विशिष्ट व्यक्तित्व की छाप भी है। नामवर सिंह की शब्दावली में कहें तो शुक्लजी की भाषा 'यथातथ्यता में क्लासिकी और बोधगम्यता में लोकसामान्य' है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी चूँकि स्वयं को तत्त्वान्वेषी के बजाय कृती मानते हैं, यह मान्यता उनकी आलोचना-भाषा में प्रतिबिम्बित होती है। उनकी आलोचना-भाषा में या तो शोधपरक तटस्थता मिलती है या फिर आस्वादपरक उच्छलता। रचना में डूबकर रचनाकार की खूबियों के बखान में इनकी शब्दावली प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा की भाषा की सीमा छूने लगती है। इनकी शैली खंडन-मंडन की न होने से दो-टूक निर्णय देने वाली वाक्य-रचना का प्रायः अभाव मिलता है।

रामविलास शर्मा की आलोचना भाषा को सामान्य भाषा में आलोचना का सफल प्रयास कहा गया है। आलोचना में यथासम्भव वे भाषा की अभिधा-शक्ति से काम लेते हैं अर्थात उनकी भाषा कहीं भी अपारदर्शी या गझिन नहीं होती। रचना के कलापक्ष की समीक्षा में आलोचना की भाषा सबसे अधिक जटिल होती है पर रामविलास शर्मा की भाषा भी वहाँ ही जटिल नहीं होती। निराला की कविताओं के कलापक्ष पर लिखते हुए जैसी सीधी-साफ भाषा का प्रयोग वे करते हैं, उससे यह बात और अधिक प्रमाणित होती है। रामविलास शर्मा ने एक स्थान पर लिखा है, "सरल भाषा सदा सरलतापूर्वक नहीं लिखी जाती। बहुधा बड़ी-बड़ी बातें ऐसे सरल शब्दों में लिखी जाती हैं कि लोग भाषा से धोखा खाकर उस सरलता के भीतर पैठने की चेष्टा नहीं करते। भावों की गहनता, सूक्ष्मता या उच्चता के साथ भाषा सरल रहे, साथ ही शिथिल भी न हो, अत्यंत दुष्कर है।" रामविलास शर्मा ने यह बात कही कविता के संदर्भ में है पर यह उनकी आलोचना-भाषा पर भी लागू होती है। विचारों की गहनता को, बिना शैथिल्य के सरल वाक्य रचना में साध लेने का दुष्कर कार्य उन्होंने सफलतापूर्वक किया है। डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना भाषा की प्रांजलता नामवर सिंह की इस उक्ति प्रमाणित करती है कि भाषा में पारदर्शिता जीवन के प्रति एक साफ समझ और सुनिश्चित दृष्टिकोण से आती है।

आलोचना-भाषा की सर्जनात्मकता का उत्कृष्ट नमूना डॉ. नामवर सिंह की भाषा है। उसमें काव्यात्मकता का रस है। उसकी विशेषता यह है कि वह जिस रचना या रचना-प्रवृत्ति की समीक्षा करती है, उसकी आत्मा में प्रवेश करती है। इस प्रक्रिया में नामवर सिंह की आलोचना-भाषा रचना से प्राणवत्ता (मुहावरे, बीज-शब्द, तेवर) ग्रहण कर

उसकी आलोचना को भी अधिक जीवंत बनाती है। छायावाद की समीक्षा करते हुए नामवर सिंह छायावादी कविता से शब्दावली ग्रहण करते हैं। शमशेर की शमशेरियत पर लिखते हुए शमशेर की ही तरह दो-दो, तीन-तीन शब्दों के वाक्य बनाते हैं और शब्दों से वाक्यों का काम लेते हैं। परंतु इस प्रक्रिया में उनकी भाषा प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा की भाषा की तरह 'बेठीक ठिकाने' की नहीं होती क्योंकि उनके दृष्टिकोण की दृढ़ता बरकरार रहती है।

आलोचना की भाषा के विषय में विद्वानों की राय है कि आलोचना की भाषा को विचार की राह में बाधक नहीं होनी चाहिए, इसमें एक व्यवस्था होनी चाहिए, साहित्य-सिद्धांत या आलोचना की अपनी पारिभाषिक शब्दावली का एक सुनिश्चित अर्थ होना होना चाहिए, आलोचना की भाषा में वागाडम्बर नहीं होना चाहिए तो सरलीकरण की सपाटता भी नहीं होनी चाहिए, आलोचना की भाषा को कविता की भाषा नहीं होना चाहिए, आलोचना की भाषा को जानदार और असरदार होना चाहिए जिसके लिए इसमें थोड़ा व्यंग्य और विनोद का पुट भी होना चाहिए। इस अध्याय के लेखन में इन कसौटियों को ध्यान में रखा गया है।

अध्याय 5. भाषा और आलोचना : समग्र मूल्यांकन

इस अध्याय में चार उपअध्याय हैं जिनमें इस शोध-कार्य से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर भाषा और आलोचना के अंतर्संबंध, आलोचना की भाषा के संबंध में विभिन्न आलोचकों के विचारों में मतैक्य और मतभिन्नता का अध्ययन किया गया है और एक आदर्श आलोचना-भाषा के क्या गुण होने चाहिए, इस पर विचार किया गया है।

भाषा का वैचारिकी और चिंतन-प्रक्रिया से गहरा संबंध है। आलोचना विचारप्रधान साहित्यिक कर्म है और भाषा विचार को अभिव्यक्त करने से पहले विचार को आकार देने का काम करती है, अतः भाषा से आलोचना का संबंध केवल माध्यम या मूल्यांकन की कसौटी का इकहरा संबंध नहीं है। आलोचक की अपनी भाषा रचना और रचना को संभव करने वाली स्थितियों को परखने की उसकी दृष्टि को नियंत्रित करती है। प्रथम उपअध्याय में भाषा और आलोचना के इस अंतर्संबंध पर विचार किया गया है।

जिस तरह रचना की भाषा के विषय में साहित्य-चिंतकों में अपनी-अपनी विचारधारा के अनुरूप सहमति-असहमति है, उसी तरह आलोचना की भाषा के सवाल पर भी आलोचकों में किन्हीं बिंदुओं पर मतैक्य है तो कुछ पर मतभिन्नता भी दिखती है। आलोचना की भाषा को सजीव और पारदर्शी और सम्प्रेषणीय होना चाहिए, इस मत

पर सभी विचारक सहमत हैं। असहमति उसके ढाँचे को परिभाषित करने पर है। हिन्दी के आरम्भिक आलोचक आलोचना को रचना की व्याख्या मानते थे, अतः आलोचना की भाषा के विषय में उनकी राय यह है कि आलोचना की भाषा और शैली की गहनता एक दोष है और आलोचना के लिए घातक है। समास शैली और क्लिष्ट भाषा से आलोचक का भाव स्पष्ट नहीं होता और उसे अपनी बात की भी व्याख्या करनी पड़ती है। अतः उनका मानना है कि व्यास शैली और सरल भाषा का व्यवहार ही आलोचना के लिए ग्राह्य है। (श्यामसुंदरदास, साहित्यालोचन) पर बाद के आलोचकों ने माना है कि आलोचना की क्लिष्टता का कारण सामासिक भाषा या शैली की गहनता नहीं बल्कि आलोचक के दृष्टिकोण की अस्पष्टता होती है। आलोचक अगर अपनी आलोचना-प्रक्रिया में अपने समकालीन दबावों और तनावों के प्रति पूरी संवेदनशीलता से जूझते हुए रचना के लिए सार्थक प्रतिमान की तलाश करता है तो उसकी भाषा सामासिक या कष्टसाध्य होते हुए भी सार्थक और प्रसंगानुकूल होगी। रचना के विश्लेषण में किसी भी तरह के तनाव से मुक्त, निष्कर्ष पर पहुँची हुई भाषा में सूक्ष्मताहीन ठंडापन होता है, व्यास शैली होने भर से ऐसी आलोचना-भाषा प्रभावी नहीं हो जाती।

आलोचना की भाषा के किसी विशिष्ट तेवर का चुनाव, अवधारणात्मक पारिभाषिक शब्दावलियों के किसी खास सेट का चुनाव आलोचक की निजी पसंद का मामला नहीं है बल्कि इसका उसके आलोचनात्मक रवैये और अपने युगविशेष के कुल बौद्धिक परिवेश से सीधा संबंध है। आलोचना-भाषा का कोई एक बना-बनाया खाका नहीं हो सकता जिससे हर दौर की आलोचना का काम निकल जाए। जीवन की स्थितियाँ लगातार परिवर्तनशील हैं, उन परिस्थियों से प्राप्त अनुभव जटिल से जटिलतर होते जाते हैं और रचना में उनकी अभिव्यक्ति की भाषा भी सूक्ष्म और बहुस्तरीय होती जाती है। इस अभिव्यक्ति की समझ और इसका विश्लेषण किसी पूर्वनिर्दिष्ट भाषायी ढाँचे के माध्यम से नहीं हो सकता। यही कारण है कि हिन्दी के प्रत्येक समर्थ आलोचक ने अपनी शब्दावली या तो स्वयं गढ़ी है या फिर पुरानी शब्दावली का प्रयोग नये अर्थ में किया है। दोनों ही सूरतों में आलोचना की भाषा लगातार अपडेट होती है। अतः आलोचना की भाषा के आदर्श पर विचार करते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि किसी एक या अन्य तरह की भाषा-शैली आलोचना की भाषा का आदर्श ढाँचा है। एक आदर्श आलोचना-भाषा के निर्माण के लिए मोटे तौर पर किन बातों से बचना चाहिए, इसकी एक सूची अवश्य बनाई जा सकती है।

हिन्दी आलोचना में भाषा-चिंतन की स्थिति क्या है और हिन्दी आलोचना की भाषा चिंतन-मूल्यांकन की भाषा के क्या आदर्श लेकर चली है, इन सवालों को केंद्र में रखकर यह शोध-कार्य हुआ है और निष्कर्ष के रूप में

प्रमाण सहित हम यह कह सकते हैं कि हिंदी आलोचना में भाषा के महत्वपूर्ण सवाल को उतना महत्व देने की परम्परा है जितने से रचना की सामाजिकता का विश्लेषण बाधित नहीं होता बल्कि सही दिशा में प्रशस्त होता है। ऐसा नहीं है कि हिन्दी में भाषा-दृष्टि से हीन और ठस भाषा में आलोचना करने वाले आलोचकों का अभाव है; परंतु हिन्दी आलोचना ने विवेक से उन आलोचकों को अपनी आलोचना-परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान दिया है जिनकी भाषा और भाषा-दृष्टि ठोस और सूक्ष्म है। वर्तमान आलोचना-परिदृश्य अपनी परम्परा से यह संतुलन सीख सकता है, साहित्य की साहित्यिकता से समझौता न करते हुए रचना और जीवन के बीच के बहुस्तरीय संबंध की परख और व्याख्या करना सीख सकता है। आलोचना की भाषा को निंदा और प्रसंशा के दो ध्रुवीय ढाँचों में ही बाँट देने की जगह एक वस्तुनिष्ठ, संवेदनशील और स्पष्ट आलोचना-भाषा को विकसित करने के सूत्र भी यहाँ से प्राप्त किए जा सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ

1. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 2012, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा
2. रामचंद्र शुक्ल रचनावली (संपा. नामवर सिंह, आशीष त्रिपाठी), 2016, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
3. हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली (संपा. मुकुन्द द्विवेदी), 2012, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
4. शर्मा, रामविलास, 2017, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
5. शर्मा, रामविलास, 2017, भारतेंदु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
6. शर्मा, रामविलास, 1994, निराला की साहित्य साधना (द्वितीय खंड), नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
7. सिंह, नामवर, 2013, छायावाद, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
8. सिंह, नामवर, 2018, इतिहास और आलोचना, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
9. सिंह, नामवर, 2008, कहानी नई कहानी, इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
10. सिंह, नामवर, 2021, कविता के नये प्रतिमान, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन

सहायक ग्रंथ

1. सिंह, नामवर, 2014, आलोचना और विचारधारा, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
2. सिंह, नामवर 2017, दूसरी परम्परा की खोज, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
3. सिंह, नामवर, 2019, वाद विवाद संवाद, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
4. शर्मा, रामविलास, 2017, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
5. शर्मा, रामविलास, 1989, भारत की भाषा समस्या, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
6. शर्मा, रामविलास , 2011, परम्परा का मूल्यांकन, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
7. मलयज, 1985, रामचंद्र शुक्ल, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
8. त्रिपाठी, विश्वनाथ, 1999, हिन्दी आलोचना, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
9. जैन, डॉ. निर्मला, 2000, हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी, नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन
10. सिंह, योगेंद्र प्रताप, 1985, भारतीय काव्यशास्त्र, इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
11. हिरियन्ना, एम., 2018, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
12. द तासी, गार्सा, 2021, हिंदुस्तानी भाषा और साहित्य 1850-1860 (अनु. किशोर गौरव), नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन
13. खरे, विष्णु, 2004, आलोचना की पहली किताब, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन
14. शुक्ल, आशुतोष, 2021, भाषा में लैंगिकता, नई दिल्ली: ज्ञानपीठ प्रकाशन
15. पाण्डेय, शशिभूषण 'शीतांशु', 2021, कहानी की अर्थान्वेषी आलोचना, इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
16. शंभुनाथ, 2022, हिन्दी नवजागरण भारतेंदु और उनके बाद, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन
17. ऑर्सिनी, फ्रांचेस्का, 2011, हिन्दी का लोकवृत्त 1920-1940 (अनु. नीलाभ), नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन
18. पाण्डेय, कैलाश नाथ, 2019, हिन्दी आलोचना का पुनःपाठ, इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
19. अग्रवाल, रोहिणी, 2020, कथालोचना के प्रतिमान, पंचकूला: आधार प्रकाशन
20. टेटे, वंदना, 2020, वाचिकता: आदिवासी दर्शन, साहित्य और सौंदर्यबोध, नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन
21. कमलेश्वर, 2015, नयी कहानी की भूमिका, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
22. शर्मा, रामविलास, 2015, भारतीय सौंदर्यबोध और तुलसीदास, नई दिल्ली: साहित्य अकादमी
23. कुमार,निर्भय, 2019, शमशेर बहादुर सिंह की आलोचना-दृष्टि, इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
24. मोहन राकेश, 2013, साहित्य और संस्कृति, नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन
25. त्रिपाठी, डॉ. रामसागर , 2017, आनन्दवर्धनाचार्यविरचितः ध्वन्यालोकः प्रथम उद्योतः, नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.

26. त्रिपाठी, डॉ. रामसागर , 2017, आनन्दवर्धनाचार्यविरचितः ध्वन्यालोकः द्वितीय उद्योतः, नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
27. शर्मा देवेन्द्रनाथ(भाष्यकार), 1985, आचार्य भामह-विरचित काव्यालंकार, पटना: बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्.
28. वाजपेयी, अशोक, 2021, फ़िलहाल, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
29. सिंह, पवन कुमार, 2020, हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों की भाषा, नई दिल्ली: रचनाकार पब्लिशिंग हाउस.
30. तिवारी, डॉ. सियाराम, 2015, काव्यभाषा, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन
31. कुमार, शैलेश, मधुप कुमार, नीलम सिंह, 2016, अभिनव संस्कृत काव्यशास्त्र: नामवर के नोट्स, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
32. सिंह, प्रो. दिलीप (संपादक), 2015, भाषा, संस्कृति और लोक, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
33. सिंह, प्रो. दिलीप, 2011, भाषा का संसार, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन
34. शर्मा, रामविलास, 2002, विराम चिह्न, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन
35. तिवारी, नित्यानंद, 2019, साहित्य का शास्त्र, नई दिल्ली: स्वराज प्रकाशन
36. तिवारी, रामचंद्र, 2010, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की रूपरेखा, इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
37. तिवारी, रामचंद्र, 2021, भारतीय व पाश्चात्य काव्यशास्त्र व हिन्दी आलोचना, वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन
38. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, 2021, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
39. मुक्तिबोध, गजानन माधव, 2018, नयी कविता का आत्मसंघर्ष, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
40. मुक्तिबोध, गजानन माधव, 1992, नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन
41. जोशी, राजेश, 2015, समकालीनता और साहित्य, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन
42. मिश्र, अच्युतानंद, 2021, कोलाहल में कविता की आवाज़, पंचकूला: आधार प्रकाशन
43. दास, डॉ. श्यामसुंदर, 2017, साहित्यालोचन, इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन
44. Matilal, Bimal Krishna, 1992, The World and The Word: India's Contribution to the Study of Language, Delhi: Oxford University Press
45. Chomsky, Noam, 2000, New Horizons in the study of Language and Mind, London: Cambridge University Press
46. Pinker, Steven, 2015, The Language Instinct, UK: Penguin Random House
47. Wellek, Rene, 1981, A History of Modern Criticism: 1750-1950, London: Cambridge University Press
48. Eagleton, Terry, 2006, Literary Theory: An Introduction, Blackwell Publishing
49. Eliot, T. S., 2017, The Sacred Wood: Essays on Poetry and Criticism, Kolkata: Books Way

50. Sapir, Edward, 2018, Language: An Introduction to the Study of Speech, Alpha Editions.
51. Waugh, Patricia, 2006, Literary Theory and Criticism: An Oxford Guide, Oxford University Press.
52. Selden, Raman, Peter Widowson, Peter Brooker, 2007, A Readers Guide to Contemporary Literary Theory, Pearson Education.
53. Cassirer, Ernst, 2005, Language and Myth (trans. Susanne K. Langer), New York: Dover Publications Inc.
54. Leavis, F.R., 1964, The Common Pursuit, New York University Press.